हैं। भगवान तो सर्प के ऊपर खड़े रहकर भगवान ने खेल किये हैं। सर्प उन्हें कुछ नहीं कर सका। लेकिन स्वयं अन्दर वीतराग थे, उन्हें कोई राग-द्वेष नहीं था, आत्मा के ध्यान में थे। ऐसे आत्मा का ध्यान आत्मा को पहचनाकर करे तो उनके जैसी वीतरागता प्रगट हो।

पूज्य बहिनश्री की तत्त्वचर्चा-सी.डी.-४ C

मुमुक्षु :- ज्ञानप्राप्ति की जिसे इच्छा है, उसे ज्ञानी की इच्छासे वर्तन करना, ऐसा जिनागम आदि सर्व शास्त्र कहते हैं। अपनी इच्छासे प्रवर्तनेसे अनादि कालसे भ्रमण किया है। उसमें क्या ... कृपया समझाईये।

समाधान :- जिसे आत्मा का स्वरूप समझना हो और आत्मा के ज्ञान की प्राप्ति करनी हो, आत्मा का स्वरूप प्राप्त करना हो तो वह खुद अनादिसे जिसप्रकार अपनी इच्छासे एकत्वबुद्धिसे वर्तता है ऐसे नहीं वर्तते हुए, ज्ञानी क्या कहते हैं और ज्ञानी का कहने का क्या आशय है, इसप्रकार वर्तन करनेसे उसे अंतरमेंसे ज्ञान की प्राप्ति होती है।

खुद तो अनादिसे भ्रम में पड़ा है। क्योंकि स्वरूप को तो जानता नहीं और जिसने जाना है, उनकी इच्छासे अर्थात् वे जो कहना चाहते हैं, वे जो कहना चाहते हैं उसका आशय ग्रहणकरके तत्त्व का क्या स्वरूप कहते हैं, ज्ञान की प्राप्ति कैसे हो? आत्मा क्या है? आत्मा का स्वरूप क्या है? ये परद्रव्य-स्वद्रव्य क्या है? और भेदज्ञान कैसे करना? अंतर आत्मा को कैसे पहचानना? द्रव्य पर कैसे दृष्टि करनी? द्रव्य-गुण-पर्याय का क्या स्वरूप है? ज्ञानी जो वह स्वरूप कहते हैं, स्वानुभूति कैसे प्राप्त हो? जो स्वरूप कहते हैं, उनका कहने का जो आशय है, उस आशय अनुसार खुद समझकर उस रूप परिणमन करना। तो उसके भव का अभाव हो और ज्ञान की प्राप्ति होती है।

अपनी इच्छासे यानी खुद अनादिकालसे अपने स्वच्छन्दसे वर्तता है, स्वद्रव्य और परद्रव्य में एकत्वबुद्धिसे, द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप अपनी मतिकल्पनासे जैसे ठीक पड़े वैसे मान रहा है, अपनी कल्पनासे इसका ऐसा है, इसका ऐसा है, अर्थ कर रहा है, ऐसे वर्तन नहीं करके, ज्ञानी जो कहते हैं उस अनुसार उसका आशय समझकर उस रूप परिणमन करे तो ज्ञान की प्राप्ति होती है।

मुमुक्ष :- माताजी! प्रश्न क्या होता है? कि वह सत्शास्त्र पढे तो उसे ज्ञान की प्राप्ति क्यों नहीं होती?

समाधान :- वह शास्त्र पढ़ता है, शास्त्र में सब रहस्य आता है, लेकिन जिसे साक्षात् प्राप्ति हुई है, उसका जो आशय ग्रहण होता है वह अलग प्रकारसे होता है। उसमें-शास्त्र

में शब्द है, लेकिन किस आशयसे शास्त्र में आता है वह आशय तो खुद जो समझा है वह अन्दरसे आचार्य का आशय क्या है उसे नक्की करके ग्रहण करता है। वह खुद जो समझे हैं उसका रहस्य समझते हैं। बाकी जो नहीं समझा है वह तो अपनी मतिकल्पनासे शास्त्र का अर्थ करता है। क्योंकि शास्त्र में सब तरह की बातें आती हैं। उसमें निश्चय की बात आती हो, व्यवहार की बात आती हो, हर तरह की बात आती है। उसमें प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय का स्वरूप सब प्रकारसे आता है। उसमें अनेक प्रकारसे निश्चयनयसे, व्यवहारनयसे सब बात आती हो, उसमें कहाँ उसे वज़न देना, उसका स्वरूप क्या ग्रहण करना, वह अपनी मतिकल्पनासे समझ लेता है। लेकिन जो समझानेवाले हो, उनका वज़न कहाँ है, कहाँ नहीं होता वह सब उनके भाव द्वारा ग्रहण होता है। चैतन्य स्वरूप जिसे प्रगट हुआ है, वह व्यवहार किसे कहते हैं, व्यवहार का कितना वज़न, निश्चय का कितना वज़न है, द्रव्य किसे कहते हैं, गुण किसे कहते हैं, पर्याय किसे कहते हैं, वह जो समझकर कहते हैं उसका आशय तुरन्त ग्रहण होने कारण बनता है।

शास्त्रमें तो अपनी मतिकल्पनासे अर्थ कर लेता है। व्यवहार के शास्त्र में सब व्यवहार की बातें बहुत आती है और अध्यात्म शास्त्र में सब अध्यात्म की बातें आती हैं। द्रव्यानुयोग में द्रव्यानुयोग की, चरणानुयोग में चरणानुयोग की, करणानुयोग में करणानुयोग की अनेक प्रकार की बातें आती हो, उसमेंसे उसका मेल करना उसे मुश्किल पड़ता है। खुद की मतिकल्पनासे, खुद की जहाँ रुचि हो, जिस प्रकार का स्वयं को रस होता है, व्यवहार का रस हो तो व्यवहार अनुसार अर्थ करता है। और अध्यात्म का उस प्रकारसे अर्थ (करे)। लेकिन निश्चय-व्यवहार की संधि करनी वह अपनी मतिकल्पनासे हो सकती नहीं। ज्ञानी जो साक्षात् समझाये वह बात अलग होती है।

मुमुक्षु :- माताजी! किसीको क्षयोपशम बहुत हो, तो क्या सच्चे अर्थ नहीं कर सकता?

समाधान :- क्षयोपशमसे अर्थ नहीं होते लेकिन अन्दर की रुचि (हो), क्षयोपशम थोड़ा हो लेकिन प्रयोजनभूत (जाने), आत्मार्थी हो तो उसके अर्थ करे, लेकिन एकबार तो अनादिसे ज्ञानी के पास उसने सुना होना चाहिये। एकबार अनादिकाल में प्रत्यक्ष ज्ञानी मिले, उसे अन्दरसे देशनालब्धि प्रगट हो और उसे कोई अपूर्वता जागृत हो तो उसकी दृष्टि उसप्रकारसे ग्रहण करने को तैयार होती है। बाकी एकबार प्रत्यक्ष ज्ञानी का योग हुए बिना उसका आत्मा उसप्रकारसे तैयार हो नहीं सकता। ऐसा निमित्त-उपादान का सम्बन्ध है। अपनेआप अर्थ करे, क्षयोपशमसे अर्थ तो बहुत करते हैं, ग्यारह अंग पर्यंत (जाता है), अन्दरसे ग्यारह अंग का ज्ञान प्रगट होता है। लेकिन अन्दरसे यदि खुद को आत्मा की रुचि यथार्थ नहीं हुई है तो वह क्षयोपशम क्षयोपशमरूप ही रह जाता है।

मुमुक्षु :- ज्ञानी की इच्छा अनुसार प्रवर्तना इसपर कुछ अधिक वज़न है ऐसा लगता है। तो यह वज़न देने का कोई कारण होगा?

समाधान :- ज्ञानी का आशय जो हो उस अनुसार वर्तना। क्योंकि अनादि कालसे अपनी मतिकल्पनासे अर्थ करता है। गुरुने ऐसा कहा है, वैसा अर्थ खुद को जहाँ ठीक लगे, खुद को जिसका रस हो उस अनुसार अर्थ करता है। लेकिन गहराई में जाकर ज्ञानी का क्या आशय है उसे तू ग्रहण करे। तुझे जहाँ ठीक पड़े, तुझे जहाँ रुचे और जहाँ तुझे पोषण मिले, तेरी मति का, रुचि का पोषण हो उस प्रकारसे तू ग्रहण कर लेता है। ऐसे नहीं। ज्ञानी का कहने का आशय क्या है? तू तटस्थ, मध्यस्थ होकर विचार कर कि ज्ञानी आशय क्या है? मुझे ठीक पड़े ऐसे विचार करे तो यथार्थ समझ में नहीं आता। खुद को ठीक पड़े, खुद को पुरुषार्थ की मन्दता हो तो गलत तरीकेसे बचाव करे कि ऐसा ही कहा है, ऐसा करे तो गलत हो जाता है। खुदसे होता नहीं तो गलत तरीकेसे बचाव करके ऐसा अर्थ नहीं करे। ज्ञानी का आशय क्या है? धीरा होकर विचार करे, सच्चा आत्मार्थी है वह धीरा होकर विचार करता है कि मैं कर नहीं सकता हूँ, लेकिन ज्ञानी को तो ऐसा ही कहना है। मेरी खुद की मन्दता है। ऐसे ज्ञानी की इच्छा अनुसार, ज्ञानी के आशय अनुसार ग्रहण करना चाहिये।

मुमुक्षु :- आत्मा के छः पद है उसमें कर्ता-भोक्ता में क्या कहना चाहते हैं? आत्मा है वह नित्य है, कर्ता है और भोक्ता है उसमें क्या कहना चाहते हैं?

समाधान :- आत्मा का कर्तृत्व दोनों प्रकारसे आ जाता है कि आत्मा स्वयं रागादि भाव का कर्ता खुद अज्ञान अवस्थासे होता है। और स्वभावसे अपने स्वभाव का कर्ता है। राग अवस्था में, विभाव अवस्था में, अज्ञान अवस्थासे रागादि का कर्ता है। इसलिये वह राग छूट सकता है और मोक्ष होता है। इसप्रकार मोक्ष का उपाय है, कर्ता है, भोक्ता है। अज्ञान अवस्थासे विभाव का कर्ता है, भोक्ता है और उससे मुक्ति होती है, मोक्ष हो सकता है और मोक्ष का उपाय भी है। आत्मा में कुछ है ही नहीं और आत्मा में विभाव हुआ ही नहीं और वह कोई जड़से हुआ है और खुदके कारण कुछ नहीं है, ऐसा नहीं है। स्वयं अज्ञान अवस्थासे विभाव का कर्ता है और विभाव का भोक्ता भी है। और उसमेंसे छूट सकता है। ज्ञान अवस्थासे स्वभाव का कर्ता होता है। और वह स्वभाव का कर्ता हो और ज्ञाता हो तो उसप्रकार का मोक्ष का उपाय है और मोक्ष भी है, ऐसा कहना चाहते हैं। आत्मा कुछ करता ही नहीं है और विभाव हुआ ही नहीं है, ऐसा नहीं है। ऐसा कहना चाहते हैं। तो-तो फिर कुछ करना नहीं रहता, यदि कर्ता-भोक्ता नहीं हो तो। विभाव अनादिसे जो हो रहा है वह कोई जड़ नहीं करता, वह खुद उसमें जुड़ता है। इसलिये विभाव हो रहा है उसका कर्ता स्वयं है और उससे छूट सकता है। ज्ञान अवस्थासे खुद स्वभाव का कर्ता हो और ज्ञाता हो तो वह विभाव छूट जाते हैं। कर्म कैसे छूटे? मोक्ष है और मोक्ष का उपाय भी है।

मुमुक्षु :- माताजी! शास्त्र में मुख्यरूपसे निश्चयनय और व्यवहारनय, दो नयसे कथन आते

हैं। निश्चयनय का अर्थ–ऐसे ही है, और व्यवहारनय का अर्थ–ऐसे नहीं है, निमित्तादि का ज्ञान करवाने को इसप्रकार कथन करने में आया है। ऐसा सब शास्त्र का रहस्य समझकर ज्ञानी के बिना अथवा ज्ञानी की इच्छा अनुसार नहीं प्रवर्ते, क्या उसे ज्ञान नहीं होता?

समाधान :– ऐसा समझा कि कैसे है और कैसे नहीं है, वस्तु का स्वरूप समझे उसे भी ज्ञानी के आश्रयसे प्रवर्तन न करे और (अपनी) इच्छासे (प्रवर्ते) उसका कोई मतलब नहीं है। ऐसे प्रवर्तने का प्रयोजन क्या है ? क्योंकि वह तो अपने क्षयोपशमसे नक्की करता है। लेकिन ज्ञानी, जिसे ज्ञान प्रगट हुआ है वे क्या कहते हैं ऐसी भावना आये बिना रहती ही नहीं। खुद क्षयोपशमसे नक्की करे कि मैंने जाना वह बराबर है, ज्ञानी क्या कहते हैं उसका विचार करने का काम नहीं है। ऐसा यदि भाव आये तो वह आत्मार्थी ही नहीं है। मैंने नक्की किया वह बराबर है, ज्ञानीने क्या कहा उसे विचारने का कोई कारण नहीं है, ऐसा यदि भाव आये तो वह आगे बढ़ नहीं सकता। शास्त्रसे नक्की करे लेकिन ज्ञानी क्या कहते हैं? मैं कहीं गलती नहीं कर रहा हूँ? ऐसा विचार आत्मार्थी को आये बिना रहता नहीं। इतना समझे कि मैं किस भूमिका में हूँ और ज्ञानी जो आगे बढ़े हैं, वे किस भूमिका में है, उनका बहुमान आये नहीं और अपनी इच्छासे प्रवर्ते तो उसकी भूमिका तैयारी ही नहीं है। उसे जहाँ निषेध आता है, वहाँ उसकी परिणति में न्यूनता है, पात्रता नहीं है। खुद शास्त्र का विचार करे लेकिन ज्ञानी क्या कहते हैं उसके साथ मिलान करने का अन्दरसे भाव आये। ज्ञानी का आशय क्या है, ऐसा उसे भाव आये बिना रहता नहीं।

आचार्यों भी लिखते हैं, जिनवरोंने ऐसा कहा है। जिनवर कथित। जिनवरने ऐसा कहा है। आचार्य भी शास्त्रों में लिखते हैं कि भगवानने ऐसा कहा है। द्रव्य–गुण–पर्याय का (स्वरूप), आचार्य शास्त्र लिखे, विचार करे तो भी भगवानने क्या कहा है? ऐसा उनके परिणाम में आये बिना नहीं रहता। जो साधना करता है उसे अपनेसे जो बड़े हैं उन्होंने क्या कहा है, उसके विचार आये बिना रहते नहीं। उसका निषेध परिणाम में आये और अपनी मतिकल्पनासे (अर्थ करे) तो ऐसा क्यों है? मैं सब समझता हूँ, ऐसा उसका अर्थ हो जाता है, यदि निषेध करे तो। मैं विचारता हूँ वह बराबर है। ज्ञानियोंने जाना उसे क्या जानना? मैं बराबर समझता हूँ, ऐसा निषेध का विचार आये तो वह पात्रता की न्यूनता है। जिसे साधना करनी हो उसे अपनेसे जो बड़े हैं, उसका विचार और बहुमान अंतर में आये बिना नहीं रहता। (यदि निषेध आता है) तो उसकी पात्रता की न्यूनता है, स्वच्छन्द है।

आचार्य भी शास्त्र में भगवान का नाम देकर लिखते हैं। उनकी शक्ति कितनी है! उनका ज्ञान कितना है! मुझे तो बहुत ज्ञान हो गया है, भगवानने जैसा कहा है वैसा ही मैं कहता हूँ, अब भगवान का नाम लिखने की आवश्यकता नहीं है, वह कोई बात है? साधक को ऐसा (भाव) नहीं आता। अपनेसे बड़े हैं, उसे ऐसा लगता है कि मुझसे बडे आचार्य कहाँ, मैं कहाँ! ऐसा उन्हें विचार आता है। तो भगवान की तो क्या बात? भगवान के तो विचार

आये लेकिन अपनसे बड़े हैं उनका भी विचार आता है।

मुमुक्षु :- एक अंतिम आशंका है, वह आपको पूछ लूँ। शास्त्र तो छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में महामुनिओंने लिख हैं। ज्ञानीपुरुष चतुर्थ गुणस्थान में हो, तो शास्त्र लिखनेवाले तो उनसे विशेष है और उस शास्त्र में कहे अनुसार अर्थ करे और ज्ञानी को गौण करे तो उसमें कोई अविनय होता है?

समाधान :- शास्त्र आचार्योंने लिखे हैं और चतुर्थ गुणस्थानवाले हैं, फिर भी उस प्रकार का प्रयोजनभूत ज्ञान तो उसके पास भी है। प्रयोजनभूत ज्ञान है और खुद यदि मार्ग को प्राप्त नहीं किया है और शास्त्रोंसे समझ रहा है तो मूल मार्ग को जानने के लिये और प्रयोजनभूत तत्त्व को जानने के लिये उसे ज्ञानी का आश्रय आये बिना रहता नहीं। प्रयोजनभूत तत्त्व, चतुर्थ गुणस्थानवालेने स्वानुभूति का मार्ग उसने जाना है, मुक्ति का पंथ उसने जाना है तो खुदने यदि प्राप्त नहीं किया है तो उसे आश्रय आये बिना रहता नहीं। (सिर्फ) शास्त्रसे वह मूल प्रयोजनभूत तत्त्व को जान नहीं सकता अन्दरसे। जानता है तो वह अपनी बुद्धिसे जानता है तो भी उसे आश्रय आये बिना रहता नहीं, खुद को प्राप्ति नहीं हुई है तबतक जिसने प्राप्त किया है उनका आश्रय आये बिना रहता नहीं। एक अंश मुक्ति का पंथ जिसने जाना है उसमें केवलज्ञान पर्यंत का मार्ग आ जाता है। फिर शास्त्रों के दूसरे अर्थ, चरणानुयोग, करणानुयोग इत्यादि उसमें नहीं आता हो, लेकिन मूल प्रयोजनभूत तत्त्व साधना का मार्ग सम्यग्दर्शन प्राप्त करे उसमें आ जाता है। केवलज्ञान पर्यंत का मार्ग उसमें आ जाता है। कितने ही व्यवहार के कथन उसमें नहीं आये, लेकिन प्रयोजनभूत मार्ग उसके पास आ गया है। खुद जानता नहीं हो तो उसे आश्रय आये बिना रहता नहीं।

मुमुक्षु :- माताजी! एक बात आपने बहुत सुंदर कही, ऐसा हो तो पात्रता भी नहीं है। खुदसे जो बड़े हैं उनके लिये यदि उसे समझने का या सुनने का सद्भाव नहीं आता तो फिर तो पात्रतामेंसे भी वह जाता है।

समाधान :- जाता है, ऐसी जिज्ञासा उसे रहनी चाहिये।

मुमुक्षु :- ये तो खुद को कहीं दोष रह जाता हो तो स्पष्टता हो।

समाधान :- प्रयोजनभूत तत्त्व को जानने के लिये उसे अन्दरसे भावना रहनी ही चाहिये। शास्त्र में भले ही सब आ जाता है, शास्त्र में आचार्य के सब कथन आ जाते हैं, फिर भी रहस्य खोलनेवाले, जिसे स्वानुभूति प्रगट हुई है उनके पाससे जो रहस्य मिले वह अपनेआप निकालना तो मुश्किल है। गुरुदेव स्थानकवासी में थे तब ये सब तो कहाँ जानते थे कि स्वानुभूति किसे कहते हैं। हिन्दी में और सब जगह अन्दर स्वानुभूति होती है, वह कहाँ समझते थे। समयसार को छोड़ देते थे। बाहर में ही धर्म मान रखा था। ये क्रियामेंसे और इसमेंसे धर्म होगा। अन्दर स्वानुभूति होती है और अन्दर चिदानंद, सहज चिदान्द आत्मा का कंटाला आता था। सब हिन्दी में भी। स्थानकवासी तो देरावासी में तो कुछ था ही नहीं।